अध्याय–सप्तम

उपसंहार

अध्याय–7
उपसंहार

वैसे देखा जाए तो प्रेमचन्द्र–युग में ही हिन्दी कथा–साहित्य के क्षेत्र में महिला लेखकों का प्रवेश हो चुका था, किन्तु पहले की अपेक्षा गत दो दशकों में महिला–जीवन की नाना समस्याओं को महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अपेक्षाकृत अधिक संजीदगी के साथ अपना प्रतिपाद्य बनाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी जागरण और स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप महिलाओं में जागरण आया है, किन्तु यह भी सच है कि सामान्य अनपढ़ महिलाओं की तरह ही शिक्षित, कामकाजी और सभ्रांत महिलाओं का भी अनेक स्तरों पर आज भी शोषण हो रहा है। उन्हें अब भी 'सेकेंड सेक्स' यानी 'उपेक्षिता' एवं 'दोयम दर्जे' का नागरिक माना जाता है। 'सिमोन द बउआर' ने अपनी 'सेकेंड सेक्स' में विश्व की महिलाओं का सर्वेक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला कि महिलाएँ सर्वत्र उपभोग की वस्तुएँ हैं और उनका नाना प्रकार से उपभोग होता है–शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्तर पर। महिला उपन्यासकारों ने सेकेंड सेक्स माने जाने वाले इन पात्रों के प्रति अपनी सहानुभूति एवं करूणा ही नहीं दिखाई है बल्कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए प्रोत्साहित भी किया है। उन्हें इस बात के लिए जागरूक किया है कि तुम्हारा अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं एक अलग पहचान है। तुम्हारा जन्म सिर्फ पुरूषसत्ता के अधीन रहकर घुट–घुट कर मरने के लिए नहीं हुआ। तुम्हारा अस्तित्व घर की चारदीवारी भर में कैद रहने तक सीमित नहीं है बल्कि उससे भी आगे तक है। प्रेमचन्द युग तक के रचनाकारों ने उपन्यासों में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववश भारतीय संस्कृति के विनाश को दर्शाते हुए स्त्री जीवन में उपजे प्रश्नों का समाधान देने का प्रयास किया है। इसी कारण इस युग के उपन्यास नीति–प्रधान एवं उपदेश प्रधान बन गये हैं, उनमें स्त्री की समस्याओं एवं प्रश्नों को यथार्थपरक अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है। किन्तु समकालीन लेखिकाओं ने अपने कथा–साहित्य में शोषण और दोहन से जूझती स्त्री के जीवन का धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थपरक चित्रण किया है।

मैत्रेयी पुष्पा बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में तेजी से उभर कर संपूर्ण हिन्दी साहित्यिक परिदृश्य पर छा जाने वाली प्रमुख उपन्यासकार की श्रेणी में आती है। उनकी प्रतिभा बहुयामी है और उनका रचना साहित्य विस्तृत है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों को स्त्री जीवन का प्रतिबिंब कहा जाता है। प्रत्येक साहित्यकार अपने समाज में जो कुछ देखता है उसे ही कल्पना का सहारा लेकर साहित्यिक रूप देता है। मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने परिवेश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को देखा समझा और जीवन के सभी घटनाओं को विशेषकर स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याओं का वर्णन बड़ी ही कुशलतापूर्वक अपने साहित्य में किया। मैत्रेयी पुष्पा का जीवन ग्रामीण परिवेश में बिता है। इसलिए उन्होंने ग्रामीण जीवन और उसकी व्यवस्थाओं की गहराई में उतरकर ग्रामीण जीवन के अछूते आयामों से हिंदी साहित्य के पाठकों को परिचित कराया। उनके लेख में सूक्ष्मता और अनुभूति की गंभीरता विद्यमान है। उन्होंने स्त्री जीवन की समस्याओं को बेबाकी एवं स्पष्ट बयानी के साथ वर्णन किया है। अपने बेबाकी के कारण वे विवाद स्पंद भी बनी रही साथ ही उन्हें यौन शोषण एवं स्वछंददेह विलास के प्रसंगों को तीव्रता देने वाला साहित्यकार कहा गया। बचपन में वे स्वयं यौन शोषण की शिकार रह चूकी हैं इसलिए उनकी रचनाओं में यौन शोषण की प्रमुखता दिखाई पड़ती है। इनकी रचनाओं की स्त्री पात्र मर्यादा, परंपरा और रूढ़ियों के बंधन में बंधी है एवं उससे मुक्ति चाहती है। उन्होंने स्त्री पात्रों के माध्यम से पितृसत्तात्मक द्वारा स्त्री शोषण के लिए बनाए गए पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़ा है।

साहित्य में स्त्री जीवन का अध्ययन बींसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आधुनिक काल से पूर्व स्त्री जीवन साहित्य में गौण रूप में मौजूद थी। स्त्री के जीवन की अपेक्षा उसके सौंदर्य का वर्णन ही प्राचीन कवियों ने किया। स्त्री को केवल भोग विलास की वस्तुमात्र समझा गया। मनुष्य होने का अधिकार उसे नहीं दिया गया। उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं था वह जन्म से मृत्यु तक पुरूष के अधीन ही रहती। कभी बहू बन कर, कभी पत्नी बन कर तो कभी माता बन कर। वहीं साहित्य में उसे कभी माया, छलनी, नरक वासनी कहा गया तो कभी उसके नख–शिख सौंदर्य का वर्णन कर राजाओं का विलास वस्तु बनाया गया। वह काम की देवी कामनी मानी गई। उसके अलावा उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व रहा ही

नहीं। उसके वास्तविक जीवन और उसकी समस्याओं पर किसी कवियों ने ध्यान दिया ही नहीं।

आधुनिक काल में आकर साहित्य में स्त्री के इस रूप में परिवर्तन देखने को मिला। जहाँ एक ओर विभिन्न समाज सुधारकों ने स्त्री की दिशा के सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये, वहीं दूसरी ओर विभिन्न साहित्यकारों ने स्त्री दशा पर विभिन्न रचनाएँ लिखी। इन रचनाओं में स्त्री की समस्याओं को उठाया गया। स्त्री जीवन पर आधारित उपन्यास और कहानी लिखी गई। इसमें स्त्री शिक्षा, बाल–विवाह, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, सती प्रथा, वैश्यों आदि की समस्या प्रमुख थी।

हिन्दी साहित्य में स्त्री का चित्रण तो आदिकाल से ही होता आया है। यह अलग बात है कि समय एवं परिस्थिति के अनुरूप स्त्री–विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन होता गया है। आदिकाल से लेकर उत्तर मध्यकाल तक स्त्री केवल भोग एवं विलास की वस्तु थी, इसलिए हिन्दी कवियों ने या तो स्त्री के मांसल–सौन्दर्य का चित्रण किया है, या उसे माया, वेश्या, नागिन, नरक का वास इत्यादि से सम्बोधित किया है, या राजपूत राजाओं की जौहर–ज्वाला में, या सती–प्रथा की अग्नि में भस्मीभूत होने में ही स्त्री की गरिमा को कैद कर दिया है।

19वीं शताब्दी में हिन्दी कथा–साहित्य में सर्वप्रथम नारी–जीवन और उसकी विभिन्न समस्याओं के चित्रण को प्रधानता मिली। आधुनिक काल के इन साहित्यकारों ने स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर विचार कर उन्हें समानाधिकार दिलाने का समर्थन किया। वैसे तो हिन्दी उपन्यास में आरम्भ से ही 'स्त्री–विमर्श' की चर्चा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले के उपन्यासों में किसानों के बाद स्त्री की समस्याओं को ही प्रमुखता मिली। किन्तु उस समय के पुरूष उपन्यासकारों ने परम्परागत नारी–संहिता के चौखटे में ही स्त्री के 'उद्धार' की बात की है। उसमें स्त्री के लिए उस घेरे से बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं था। पर आजादी मिलने और विशेषकर भारतीय संविधान लागू होने के बाद भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति में जबरदस्त बदलाव आ गया। अब नारी के प्रति पुरूष–वर्ग में ही बदलाव नहीं आया, अपितु स्त्री भी अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्ष करने लगी। बीसवीं शताब्दी की समाप्ति पर 'स्त्री–विमर्श' का संघर्ष काफी तेज हो गया। और आजादी

के बाद के दशक में प्रबुद्ध महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में नारी पीड़ा और स्त्री अस्मिता के प्रश्न को अधिक गंभीरता के साथ चित्रित किया।

स्त्री–विमर्श की दृष्टि से उपन्यास के क्षेत्र में अनेक लेखिकाओं ने योगदान दिया है, जिनमें मैत्रेयी पुष्पा का स्थान विशिष्ट है। उनके सभी उपन्यासों का मूल्यांकन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकालकर आता है कि उनका प्रत्येक उपन्यास आरम्भ से लेकर अन्त तक औरत की त्रासदी और उसके संघर्ष को व्यक्त करता है। इस प्रकार इनका प्रत्येक उपन्यास 'औरत होने की लड़ाई' का उपन्यास है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में 'स्त्री' को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने अपने प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी रूप में नारी–समस्या को उठाया है। लेखिका अपने युग की नारी–समस्याओं के प्रति काफी चिंतित दिखाई देती हैं। प्रारंभ से ही वे नारियों पर समाज द्वारा लगे प्रतिबंधों का विरोध करती हैं। और समाज की उन रूढ़िग्रस्त मान्यताओं पर भी प्रहार करती हैं जो साम्राज्यवादी एवं सामन्तवादी समाज की देन हैं।

मैत्रेयी जी ने अपने साहित्य में स्त्री की स्वाधीनता के साथ–साथ उसकी आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया है क्योंकि स्त्री जब तक आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर नहीं होगी तब तक पुरूष–प्रधान समाज में उसका स्वाधीन होना असंभव है।

मैत्रेयी जी ने अपने कथा–साहित्य में स्त्रियों को आर्थिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता देने के साथ ही साथ उन्हें विवाह और प्रेम करने की भी पूर्ण स्वतंत्रता दी है।

मैत्रेयी जी ने अपने अधिकतर उपन्यासों में विधवा–समस्या एवं अनमेल विवाह की समस्या को विशेष महत्व दिया है। लेखिका विधवा–समस्या का एकमात्र हल विधवाओं के पुनर्विवाह में मानती हैं।

मैत्रेयी जी के स्त्री–पात्र पुरूषों के पाश्विक अत्याचारों के सजग हैं इसलिए वे पुरूषों द्वारा होने वाले पाश्विक एवं अमानवीय अत्यचारों के विरूद्ध विद्रोहिणी एवं क्रान्तिकारिणी बन जाती हैं। लेखिका अपने उपन्यास–साहित्य में स्त्रियों की स्वाधीनता को लेकर फिक्रमन्द ही नहीं हैं बल्कि वे प्रत्येक स्तर पर स्त्रियों को

पुरूषों के समान अधिकार देने की भी प्रबल समर्थक हैं। इसीलिए इनके स्त्री पात्र पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर राजनीतिक गतिविधियों एवं सामाजिक कार्यों में बढ़—चढ़कर हिस्सा लेते हैं।

'विजन' उपन्यास को छोड़कर मैत्रेयी जी के प्रायः सभी उपन्यासों की कथाभूमि ग्रामीण है। यह भूमि उनकी जानी—पहचानी ही नहीं बल्कि उनके संवेदनों में रची—बची है। इसीलिए वह पूरी निजता और प्रमाणिकता के साथ इस समाज को अतंरगता और संपूर्ण पार्श्विकता में देखने में समर्थ हो सकी हैं। उनके यहाँ गाँव न 'अहा' का मिथ धारण करते हैं, न वे किसी फिल्मी दृश्य की तरफ कुछ ग्रामीण चीजों के संकलन और सरलीकरण हैं। उनके यहाँ स्पादित जीवन को पूरी जटिलताओं एवं विविधताओं में यथार्थ दृष्टि से देखा गया है। परंपरा और परिवर्तन के टकरावों को उनकी सूक्ष्म नजर अत्यन्त विशदता के साथ देखती है।

इस क्षेत्र में मैत्रेयी जी अन्य समकालीन महिला कथाकारों से भिन्न हैं। जहाँ अधिकतर लेखिकाओं ने अपने कथा—साहित्य में नगरीय मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्र अंकित किये हैं क्योंकि उनके अनुभवों की संपृक्ति उसी समाज से है। वहीं मैत्रेयी जी ने व्यापक ग्रामीण समाज के भीतर जीवन को इस तरह आविष्कृत किया है, जिसमें पूरा समाजशास्त्र निहित है। मैत्रेयी पुष्पा ने भारतीय ग्रामीण परिवेश में जी रही हिन्दू स्त्रियों को अपने कथ्य का आधार बनाया है। कड़वी सच्चाई यह है कि पुरूष—प्रधान समाज में सदियों से महिलाओं का दमन और शोषण होता आया है, समाज में उनकी भूमिका और उनकी सामाजिक हैसियत का निर्धारण पुरूष के द्वारा ही हुआ है, समाज के हाथों जो दर्जा स्त्री को दिया जाता रहा है वह किसी हद तक उसकी मानसिक बनावट का नियामक होता है। औपनिवेशिक मानसिकता इस पूरे प्रश्न को 'पुरूष के खिलाफ स्त्री' या 'पुरूष बनाम स्त्री' के ढाँचे में देखने की मजबूरी पैदा करती है। कुल जमा नतीजा यह होता है कि वह या तो पुरूष प्रदत्त परिभाषा में अपनी सार्थकता तलाशती हुई उसके समर्थन में खड़ी हो जाती है या विरोध में। मैत्रेयी जी के यहाँ दोनों ही प्रकार की स्त्रियों का चित्रण हुआ है किन्तु उनके लेखन के केन्द्र में ऐसी स्त्रियाँ रहीं हैं जो पुरूष वर्चस्व से मुक्ति पाने के लिए किसी भी सीमा को लाँघने का साहस रखती हैं। वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हैं और अपनी

अलग पहचान बनाती हैं। सारंग, मन्दा, कुसुमा, कस्तूरी, डॉ० आभा, अल्मा इत्यादि ऐसी ही स्त्रियाँ हैं।

मैत्रेयी जी के स्त्री–लेखन में नारी के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। अपने पहले रूप में वह सदियों से चलती आ रही शोषण और अत्याचारों की स्थितियों का शिकार हैं। दूसरे रूप में वह नयी परिस्थितियों से उत्पन्न हुई समस्याओं से जूझ रही हैं और तीसरे रूप में वह आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने पर परम्परागत नारी संहिता की जकड़न को चुनौती देने और राजनीतिक दृष्टि से सबलीकरण की दिशा में अग्रसर होने के लिए संघर्षरत हैं। लेखिका ने अपने अंतिम दशक के प्रकाशित उपन्यासों में ऐसी स्त्रियों का चित्रण किया है जो अपने सामने उपस्थित चुनौतियों को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करती हैं। साथ ही ये स्त्रियाँ अपने संबंध में कोई भी निर्णय लेने के लिए पुरूष का मुँह नहीं जोहतीं। मैत्रेययी पुष्पा के उपन्यासों का अध्ययन करने के उपरान्त यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि इनके उपन्यासों की भावभूमि अत्यन्त व्यापक है। इनके सभी उपन्यास स्त्री के उत्पीड़न एवं संघर्ष पर केन्द्रित हैं, किन्तु मैत्रेयी जी ने इनमें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का आँचलिकता के आवरण में यथार्थपरक चित्रण किया है। इन उपन्यासों के माध्यम से लेखिका ने स्त्रीत्व के संदर्भ में नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अन्दर सारंग, मन्दा, कुसुमा, अल्मा कस्तूरी एवं डॉ० आभा जैसी अनेक स्त्रियाँ जिन्दा हैं, जो पुरूषसत्ता के शिकंजे मुँसे रहकर भी अपने अस्तित्व के लिए अन्त तक संघर्ष करती हैं, जो दिन–रात उनसे कहा करती हैं कि अपने समय की तलाश में निकलो। इतिहास को पुराणों और शास्त्रों को धता बताकर किसी दूसरे समय में जा निकलों, जो तुम्हारा अपना बनाया हुआ हो। माना कि इस निर्माण के समय में शासक क्रोधित हो उठेंगे, अपने हथियार साध लेंगे, हो सकता है हमें परित्याग, निष्कासन या मौत का ही वरण करना पड़े, मगर हमारी दावेदारी की इबारत किसी प्रेमगीत की तरह पढ़ी जाएगी। हम जन्मजात अपराधी, सजा याफ्ता कैदी जिजीविषा का मोह पाले हुए अब तक बन्दी बने रहे, पर सिमटने–सिकुड़ने के बावजूद अपना समय रचने की इच्छा से बाज नहीं आये।................................समय यही परिभाषा हमारे पास है, जिसके हिसाब से बेहिसाब मर्यादाओं, मानकों और सीमाओं को टूटना होगा। स्वतंत्रता के खतरे उठाने होंगे।

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में गुलाम भारत से लेकर आजाद भारत तक के समय को लिया है। और लेखिका ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारत की स्त्री आज भी पुरूषसत्ता के वर्चस्व से मुक्त नहीं हो सकी है। संविधान में नारी को चाहे कितने ही समानाधिकार क्यों न दिये गए हों, किन्तु वास्तविकता यही है कि समानता की संवैधानिक सुरक्षा केवल कागजों तक ही सीमिल है। आज भी समाज में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की है।

मैत्रेयी जी के उपन्यास अनमेल–विवाह, विधवा समस्या, दहेज–प्रथा, सती–प्रथा, यौन–शोषण, स्त्रीत्व अपमान, धार्मिक अन्धविश्वास, सड़े–गले रीति–रिवाज, भ्रष्ट प्रशासन, स्त्री–मुक्ति, शिक्षा का प्रसार, स्त्री उन्मूलन इत्यादि संदर्भों पर केन्द्रित हैं।

मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी की मुक्ति–यात्रा में अनेक अवरोधों को दूर करने के लिए कुछ बेचैन करने वाले सवाल भी उठायें हैं, जिन्हें टालकर स्वस्थ समाजिक स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती है। पति की लम्बी आयु के लिए व्रत रखना सिर्फ पत्नी के लिए ईश्वर है और स्त्री को पत्नी बनने के लिए अपनी इच्छाओं का दमन कर देवी रूप लेना पड़ेगा। न पैत्रक सम्पत्ति में स्त्रियों का कोई हिस्सा है और न पति की जायदाद में। जिंदगी भर किए गए परिश्रम का उन्हें कोई मूल्य क्यों नहीं दिया जाता? विवाह चयन में स्त्री की स्वतन्त्रता, अपवित्रा का सवाल, शुचिता की अवधारणा एवं नयी नैतिकता की माँग, विवाहेत्तर संबंध इत्यादि प्रश्नों पर लेखिका ने बड़े तल्ख सवाल उठाये हैं।

लेखिका ने 'विवाह–संस्था को भी प्रश्नों के घेरे में लिया है। उनका कहना है कि विवाह स्त्री को उसकी देह एवं श्रम के बदले जीवन भर के लिए रोटी, कपड़ा और छत मुहैय्या कराने और बाहरी पुरूष से सुरक्षा करने अश्वासन देता है, जिसके बदले में लेता है स्त्री का आत्म–सम्मान। स्त्री का यह आत्म–सम्मान उसके बचपन से ही छीन लिया जाता है। परिणामस्वरूप स्त्री कई बार शिक्षित एवं स्वावलम्नी होकर भी पति, पुत्र या घर के अन्य पुरूष–सदस्यों के अधीन रहती है। सुरक्षा एवं सम्मान के बदले में व्यक्तिगत जीवन जीने का दुस्साहस नहीं कर पाती। परिवार से मिलने वाली सुरक्षा की मोहताजी का महत्वपूर्ण कारक है, उसका नाकमाऊ समझा जाना। यही वजह है कि जिसके (पुरूष के) पास अर्थ है, शक्ति के स्त्रोत भी उसी

के पास केन्द्रित हो जाते हैं। जबकि स्त्री घरेलू–श्रम में अपनी जिन्दगी खत्म कर देती है, जिसका न कोई मूल्य दिया जाता है, न आँका जाता है। औरत का दिन–रात खटना बेगार खाने में जाता है। जबकि वह भुलाये रहतीा है–अपने को मोह–ममता में। लेखिका ने स्त्री की इस आर्थिक पराधीनता के प्रति उन्हें सचेत किया है।

लेखिका ने अपने उपन्यासों में ऐसी स्त्रियों का भी चित्रण किया है, जो शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वाबलम्बी होने पर भी पुरूष की संस्कार जन्य कुंठाओं का शिकार होती हैं। डॉ० नेहा, डॉ० आभा एवं कस्तूरी इसी प्रकार की स्त्रियाँ हैं। ये एसी संघर्षशील स्त्रियाँ हैं जो पुरूष के अंहकार के सामने चुपचाप घुटने नहीं टेक देती, बल्कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अन्य तक संघर्ष करती हैं। इन स्त्रियों के माध्यम से लेखिका केवल स्त्रियों के दमन की कथा प्रस्तुत न करके इस दमन–चक्र के खिलाफ आवाज भी उठाती है। मैत्रेयी जी को यह बिल्कुल बर्दाशत नहीं कि केवल स्त्री से ही अस्पृश्य (अनछुआ) रहने की उम्मीद क्यों की जाए। स्त्री की शुचिता की जिम्मेदारी केवल स्त्री पर ही क्यों रहे, पुरूष पर क्यों नहीं। स्त्री से सदैव अनछुआ रहने की अपेक्षा की जाती है। उसके कौमार्य और सौन्दर्य की रक्षा को एक मूल्य के रूप में उसके साथ जोड़कर देखा जाता है। स्त्री का दुर्भाग्य तो यह है कि जो पुरूष–वर्ग स्त्री से अनछुआ रहने की उम्मीद करता है, वही पुरूष वर्ग उसके कौमार्य को भंग करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। 'इदन्नमम' की मंदा का बलात्कार 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी का मीरा के पिता द्वारा किया गया दुर्व्यहार इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

इसके साथ ही मैत्रेयी जी यह सवाल भी उठाती हैं कि केवल स्त्री ही अपनी भावनाओं एवं इच्छाओं पर संयम क्यों रखे, पुरूष क्यों नहीं? पुरूष दस स्त्रियों से शारीरिक सम्बन्ध बनाने के उपरान्त भी पवित्र रहता है, जबकि स्त्री किसी पुरूष से केवल भावनात्मक रूप से जुड़े होने पर भी अपवित्र घोषित कर दी जाती है। स्त्री की पवित्रता की परीक्षा पुरूष ले सकता है, स्त्री पुरूष की क्यों नहीं? 'स्त्री' को लेकर मैत्रेयी जी के पास अनेक ऐसे प्रश्न और निष्कर्ष हैं। जोकि इनके उपन्यासों में गहरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त हुए हैं। लेखिका का मानना है कि विवाह और बच्चे आदि से परे भी औरत का अस्तित्व है औरत की जिन्दगी सिर्फ पुरूष की

तलाश नहीं है, बल्कि अपनी भी सार्थकता है। इसीलिए इनके यहाँ स्त्रियाँ पुरूष–वर्चस्व एवं परंपरागत नारी–संहिता के उन सारे नियमों को पैरों–तले रौधती जाती हैं जो उसके अस्तित्व को लहूलुहान करते हैं।

मैत्रेयी जी के यहाँ 'बेतवा बहती रही' से लेकर 'त्रिया–हठ' की स्त्री तक की कथा मिलती है। जिसमें लेखिका ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की नियति चाहे पुरानी पीढी की हो या नयी पीढी की, पुरूष द्वारा उसका शोषण अवश्य होता है, भले ही उस के रूप बदल जायें। लेखिका ने इन उपन्यासों में स्त्री की नियति को दूसरे ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी ऐसी थी, जो पुरूषवर्ग द्वारा दी गयी नाना प्रकार की यातनाओं को मूक बनकर झेलती रही, आह तक न की और न ही अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के लिए कोई संघर्ष किया जबकि 'त्रिया–हठ' की उर्वशी ग्रामीण परिवेश में रह रही एक ऐसी अड़ियल स्त्री है, जो सारे सामाजिक संबंधों, भ्रन्तियों एवं वर्जनाओं को तोड़कर एक विवाहोत्तर संबंध को बहुत धड़ल्ले से जीती है। इस उर्वशी के रूप में लेखिका ने गाँव के संदर्भ में एक नया 'स्त्री–विमर्श' प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में कुछ ऐसा नया नहीं रचा है, बल्कि हमारे जीवन जगत को एक अलग आँख से देखा और दिखाया है। यह आँख एक सहज स्त्री की आँख है जोकि अपने जीवन का निर्णय करना खुद जानती है। इसमें उसे किसी का दखल पसंद नहीं है– न समाज का, न धर्म का और न रिवाजों का। कुल मिलाकर उनके उपन्यास भारतीय ग्रामीण स्त्री जीवन के आख्यान हैं।

औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से भी मैत्रेयी जी के सभी उपन्यास बेजोड़ हैं। इनके सभी उपन्यासों में मैत्रेयी जी की लेखन–क्षमता का सम्यक परिचय मिलता है। इनके उपन्यासों के संवेदनात्मक स्तर पर रचना प्रक्रिया को संश्लिष्ट प्रयोगों के विश्लेषण के उपरान्त पता चलता है कि इनके उपन्यासों की भाषा और शैली वही नहीं है जो एक पुरूष रचनाकार की है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त शब्दों का गहरा संबंध समाजशास्त्र और परंपरा में अवस्थित स्त्री की स्थिति है। जहाँ एक ओर आंचलिक भाषा का प्रयोग उनके उपनयासों को सजीवता प्रदान करता है वही

लोकगीतों एवं लोक–प्रचलित कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग कथ्य में रोचकता उत्पन्न करता है। अंततः कहा जा सकता है कि स्त्री–विमर्श की दृष्टि से मैत्रेयी जी के उपन्यास अपनी ऊपरी सादगी और सरलता के बावजूद बेहद जटिल ओर संश्लिष्ट उपन्यास है। इनके उपन्यास जहाँ एक ओर औरतों और वंचितों की संघर्ष–कथा है, वहीं उनमें स्त्री का आत्मसंघर्ष भी है इनके उपन्यास आंचलिक संदर्भों में उभरती नारी–चेतना के आख्यान होने के साथ ही साथ भारतीय उपन्यास की एक और समर्थ कड़ी है। इनके उपन्यास ग्रामीण परिवेश में जी रही स्त्री की पीड़ा और मन की सार्थक पहचान एवं नयी जमीन की तलाश हैं, जोुणीश्वरनाथ रेणु से आगे मगर उल्लेखनीय एवं अपने ढंग के अलग तरह के उपन्यास हैं। जोकि लेखिका के सूक्ष्म एवं पारदर्शी भाषा जाल से बुने गये हैं। इसी कारण इनके उपन्यास पिछले वर्षों में 'स्त्री–विमर्श' की दृष्टि से प्रकाशित उपन्यासों से पृथक एवं विशिष्ट हैं।

इनका लेखन जीवन के उतार–चढ़ाव के जीवनानुभव का व्यापक रचनाुलक है। पुष्पा जी ने अपने लेखन में स्त्री की पीड़ा और शोाण को दर्शाया है। परंतु अपनी स्त्री पात्रों को जीवन के संर्घा में हारते हुए नहीं दिखाया है। इनकी स्त्रियाँ संर्घा से गुजरती हुई एक नए सूरज का उदय करते हुई नजर आती हैं और स्त्री जीवन को एक नया विजन प्रदान करती हैं।

स्वतन्त्रता के बाद साहित्य में एक बड़ा परिवर्तन देखने को मिला। साहित्य में पढ़ी–लिखी बुद्धिजीवी स्त्रियों ने अपनी कलम चलाई। साहित्य में स्त्री जीवन का वर्णन पहले पुरूषों द्वारा ही होता था। अतः स्त्री के लिए यह सहानुभूति का साहित्य था मगर जब स्त्री लेखिकाओं ने अपना कलम इस पर चलाया उनके लिए यह स्वानुभूति का साहित्य था। उन्होंने स्त्री जीवन की दशा का बड़े ही सजीवता और सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया। स्त्री की वास्तविक दशा से न केवल लोगों को परिचित कराया बल्कि उसका विरोध भी अपने साहित्य में किया। ऐसे ही स्त्री साहित्यकार के रूप में मैत्रेयी पुष्पा का नाम बड़े ही आदर पूर्वक लिया जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व का विचार करने पर मिला की उनका जन्म ग्रामीण क्षेत्र पर होने के कारण उनकी रचनाओं में ग्रामीण क्षेत्र का वर्णन ज्यादा मिलता है। ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं को उन्होंने स्वयं झेला है, उसको जिया है और उसकी

अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की हैं। उनका जीवन हमेशा संघर्षपूर्ण रहा है। विभिन्न समस्याओं को झेलने के बाद उन्होंने खुद को उभारा है। इनके लिखने में इनके परिवेश, प्रकृति एवं भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। इनका कृतित्व क्षेत्र विस्तृत है। इन्होंने उपन्यास, कहानी, नारीविमर्श से संबंधित लेख लिखे हैं। इनकी लगभग सभी रचनाएँ स्त्री समस्या पर आधारित है। साथ ही अपनी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में बिना किसी हिचक के अपने जीवन की वास्तविकता को लोगों से परिचित कराया है। आज भी स्त्री समस्या पर वे रचनाएँ लिख रही है और अपने लेखों से शोषणउ और अत्याचार पर आवाज उठाती नजर आती हैं।

'स्त्री जीवन के विविध रूप' का अध्ययन करने पर मिला की स्त्री शब्द पर प्राचीन काल से ही विचार होते आए हैं। 'स्त्री' शब्द को विभिन्न अर्थों से समझने का प्रयास किया गया है। उसे उसके गुणों के आधार पर नारी, महिला, औरत आदि नाम दिए गए हैं। भारतीय स्त्री के प्राचीन स्वरूप में भिन्न था और आज भिन्न है। उसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। वह पहले की तुलना में आज अधिक स्वतन्त्र है। मगर आधुनिकता के कुछ अवगुण भी उनमें आयी है। समकालीन स्त्री पाश्चात्य परिवेश से पूर्णतः प्रभावित होकर भारतीय सांस्कृतिक को नकार रही है। नकारने की यह प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के लिए खतरा साबित हो रही है। इसका परिणाम है कि साहित्य में उत्तर आधुनिकतावाद, भूंमडलीकरण, बाजारवाद आदि का प्रभाव देखने को मिल रहा है। आज समकालीन स्त्री अधिकर के मामले में पुरूष की बराबरी की माँग कर रही है। और इस बराबरी के लिए वह संघर्षरत है। कई स्थानों पर उन्हें सफलता भी मिली है। स्त्री का अपने अधिकार की माँग सही मगर नकारी की इस प्रवृत्ति से उसे बचने की आवश्यकता है।

'चाक' में वर्णित स्त्री जीवन का अध्ययन करने पर मिला कि 'चाक' मैत्रेयी पुष्पा की बहुचर्चित उपन्यास है। ग्रामीण क्षेत्र के स्त्री जीवन की वास्तविक चित्र इस उपन्यास में उकेरा गया है। उपन्यास की कुछ स्त्री पात्र एक ओर तो शोषण को चुप चाप सहती है मगर प्रमुख स्त्री पात्र अपने ऊपर हो रहे शोषण का खुलकर विरोध करती है। सारंग और रेशम ऐसी ही पात्र है, जो अन्याय को नहीं सहती तथा डटकर उसका विरोध करती है। 'सारंग' उपन्यास की प्रमुख नायिका है उसका व्यक्तित्व प्रखर है। वह गुरूकुल से पढ़ी लिखी है। स्त्री को गुलाम बनाने वाली

प्राचीन रूढ़ियों का वह खुलकर विरोध करती है। अपने बहन रेशम के हत्यारे डोरिया को सजा दिलाने के लिए हर तरह से प्रयास करती है। उसे सजा नहीं होती और भारतीय न्याय व्यवस्था की सच्चाई हमारे समक्ष आती है। गाँव के चुनाव में कोई योग्य पार्थी न देख वह खुद चुनाव में खड़ी होती है और जीत भी जाती है। स्त्री के सुधार के लिए गाँव के स्त्रियों को जागरूक करती है। उसका यह व्यक्तित्व समाज के स्त्रियों को प्रेरणा देने वाला है। 'रेशम' भी ऐसी ही पात्र है जो अपने अधिकार के लिए लड़ती है। समाज के नियमों को वह सीधे सीधे नकारती है। अपने पति के मृत्यु के पश्चात् वह न केवल अन्य पुरूष से संबंध बनाती है बल्कि गर्भवती भी हो जाती है। और उस बच्चे को जन्म देना चाहती है। उसका यह व्यक्तित्व समाज को चुनौती देती नजर आती है। समाज के खिलाफ उठाया गया इतना बड़ा कदम उसे जान देकर चुकानी पड़ती है। परंपरा और रूढ़ियों से जकड़े इस समाज को यह दोनों पात्र यह संदेश देती है कि अन्याय के खिलाफ उन्हें कदम उठाना होगा। परंपरा के नाम पर बनाई गई यह रूढ़ियाँ वास्तव में पुरूषसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्रियों को गुलाम बनाने की साजिश है।

'चाक' उपन्यास में कुछ स्त्री पात्र ऐसी है जो पारंपरिक रूढ़ियों के इस विरोध के कारण जान गँवाती है। पंचान्न बीबी को प्रेम करने की सजा दी जाती है जो हमारे आदर्श समाज और महान संस्कृति पर प्रश्न चिन्ह खड़ करती है। वैवाहिक संस्थाओं पर बदलती आर्थिक स्थितियों के प्रभाव के साथ यौन संबंध, महिला के अधिकार, शिक्षा व्यवस्था में स्त्री का प्रवेश का आंकलन भी किया है। वही रेशम की हत्या अपने स्वतन्त्रता के लिए उठाने वाले उन लाखों स्त्रियों की हत्या है। सारंग की तरह सभी स्त्री को अपने अधिकार के लिए शुरू से अंत तक लडना होगा। सारंग के आवाज को जैसे दबाया गया मगर अंत तक वह हार नहीं मानी। स्त्री को 'चाक' उपन्यास की पात्रों की तरह लड़ना होगा तभी उसे अपना अधिकार प्राप्त होगा।

चाक' में चित्रित स्त्री एवं मैत्रेयी पुष्पा की रचना दृष्टि का अध्ययन करने पर मिला की स्त्री जीवन में बहुत तरह की वेदना है। उसका जीवन वेदना से जुड़ा हुआ है। वह जन्म से ही बेटी, बहन, पत्नी, माता के रूप में दुख सहती हैं चाक में भी स्त्री के इन रूपों का वर्णन मिलता है। सारंग और रेशम भले इससे लड़ती है,

मगर उसे स्त्री होने का सजा भुगतना पड़ता है। प्रतिरोध करती यह स्त्री उपन्यासकार की ऐसी आधुनिक पात्र है जिनके द्वारा ही स्त्री न्याय मिल सकता है। सारंग का चुनाव लड़ना स्त्री का घर परिवार के अलावा अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व कायम करना है। स्त्री को घर परिवार के इस बंधन से निकलना होगा। आर्थिक रूप से स्वयं को मजबूत बनाना होगा तभी वह समाज में बराबरी का अधिकार पा सकती है। परंपरा के साथ–साथ आधुनिकता के कारण स्त्री जीवन में परिवर्तन आया है। यही परिवर्तन उसके चेतना में सहायक है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की भावभूमि स्त्री–जीवन पर केन्द्रित है। 'बेतवा बहती रही', 'अगनपाखी', 'चाक', 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'इदन्नमम' इत्यादि उपन्यास विधवा समस्या, अनमेल विवाह, बाल–विवाह, दहेज प्रथा, कन्यावध, कन्या विक्रय, यौन शोषण इत्यादि समस्याओं पर आधारित है। मैत्रेयी पुष्पा के प्रत्येक उपन्यास आरम्भ से लेकर अंत तक स्त्री की पीड़ा और उसके संघर्ष को व्यक्त करता है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में स्त्री पीड़ा और इस पीड़ा से जागृत अस्तित्वबोध के चलते स्त्रियों के संघर्ष को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उद्घाटित किया है।

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास मुस्लिम परिवार से उपजा उपन्यास है। जिसमें मुख्य कथा कही गई है 'महरूख' की। 'महरूख' एक ऐसे खानदान में जन्म लेती है जहाँ उससे पहले कोई भी बच्ची पैदा होने के बाद जीवित नहीं रही थी। जब 'महरूख' ने जन्म लिया तो सभी को उसके जीने में भी आशंका हुई और तभी उसकी मौसी ने पैदा होते ही उसकी ठीकरे की मंगनी कर दी अपने बेटे रफत के साथ। 'महरूख' ने आँखें खोली और जिंदा भी रही तो सबने यकीन कर लिया कि यह ठिकरे की मंगनी का ही असर है। 'महरूख' और रफत की मंगनी हो गई थी। दोनों अपने–अपने घर में बड़े हो रहे थे। 'महरूख' गाँव में एक सीधा–साधा जीवन बिता रही थी और अपनी पढ़ाई पूरी कर रही थी। रफत भी शहर में यूनिवर्सिटी में अपनी पढ़ाई पूरी कर रहा था। 'महरूख' बीहै। एहै। कर चुकी थी अब माँ–बाप की इच्छा उसकी शादी की थी। उन्होंने रफत के घरवालों को कहलवा भेजा, रफत भी साथ था। उसे शहर का रहन–सहन पता था। मँहगाई का जमाने में दोनों मियाँ–बीवी के न कमाने पर घर का खर्च चलना मुश्किल है कह कर रफत ने 'महरूख' को भी यूनिसर्सिटी में पढ़ाने का अनुरोध उसके माता–पिता से किया।

'महरूख' के माता–पिता को यह बात थोड़ी अटपटी लगी परंतु अंत में बेटी की खुशी की खातिर उन्होंने हाँ कर दी और 'महरूख' को दिल्ली भेज दिया रफत के साथ। 'महरूख' पढ़ने में तेज थी। उसका दाखिला रफत ने एमहै। एहै। में करा दिया। परंतु रफत ने 'महरूख' का परिचय अपनी चचेरी बहन के रूप में कराया था। रफत यूनिवर्सिटी में काफी प्रसिद्ध युवा नेता था, पढ़ने में भी तेज, तरक्की पसंद रफत ने 'महरूख' को यूनिवर्सिटी में रहना सिखा दिया था। कुछ दिन साथ रह कर रफत अपनी आगे की पढ़ाई करने विदेश चला जाता है। महरूख यूनिवर्सिटी में अकेली रह जाती है। कुछ दिनों बाद महरूख को पता चलता है कि रफत ने विदेश में किसी विदेशी लड़की से शादी कर ली है। फिर भी महरूख को अपने यकीन पर यकीन था कि यह सब केवल अफवाह है। धीरे–धीरे महरूख और रफत के बीच खतों का सिलसिला बंद हो गया। शुरू में महरूख बहुत ही मायूस हुई। पर उसने खुद को संभाला और दिल्ली छोड़कर एक गाँव में एक छोटे से स्कूल में पढ़ाने लगी। पाँच हजार की उसकी ये नौकरी उसे अपने होने के एहसास को समझने में बहुत ही मददगार साबित हुई। कहानी के बीच में रफत लौट आता है और महरूख से शादी का प्रस्ताव रखता है। पर महरूख अब अपने सफर में आगे निकल चुकी थी। अतः वह शादी से मना कर देती है और रफत को कहीं और शादी कर लेने के लिए कहती है। रफत कहीं और शादी कर लेता है और महरूख जिस स्कूल में पढ़ाती थी वहीं प्रिंसिपल बन जाती है। महरूख के माता–पिता की मृत्यु के बाद महरूख अपने इक्कीस भाई–बहनों का परिवार छोड़कर अपना घर बनाने निकल पड़ती है। गाँव में जहाँ वह स्कूल प्रिंसिपल है वहाँ एक नई आवाज और हिम्मत का स्रोत बनकर उपन्यास के अंत में एक नई महरूख एक नई दिशा समाज को देती है।

'छिन्नमस्ता' (1993) उपन्यास की कथावस्तु में बचपन से ही प्यार और अधिकार पाने के लिए उसने संघर्ष किया था। गुप्ता खानदान में जन्मी छोटी बेटी प्रिया कहने को एक बड़े परिवार में पैदा हुई थी। परंतु उसके पास दाई माँ के सिवा अपना कहने को और कोई नहीं था। प्रिया ने अपने जीवन में पारिवारिक यौन शोाण से लेकर अपने वैवाहिक जीवन तक की करुण कथा की यात्रा को तय किया था। प्रिया भारतीय समा की वो स्त्री पात्र है जो हर कदम पर पुरुा सत्ता की

घिनौनी मंशा का शिकार होती रही है। प्रिया एक ऐसी स्त्री पात्र है जो हर जगह पुरुष द्वारा छली गई है। उसके बड़े भैया, अध्यापक मुखर्जी से लेकर पति नरेंद्र तक सभी ने उसका सिर्फ इस्तेमाल किया है। अपने घर में मान–अपमान सहने के बाद प्रिया की एक बड़े खानदान में नरेंद्र के साथ शादी हो जाती है। परंतु उस घर में भी प्रिया को सम्मान के नाम पर सिर्फ मानसिक यातना ही मिलती है। पति नरेंद्र शहर का एक नामी व्यापारी है। व्यापार जगत में उसका अपना एक नाम और रुतबा है। नरेंद्र ने सिर्फ अपने पिता के व्यापार को ही संभाला था उसका खुद का कोई योगदान उसमें नहीं था।

छब्बीस वर्षीय युवक के साथ प्रिया की शादी कर दी गई। प्रिया को लगा कि शायद शादी के बाद उसकी जिंदगी में सब–कुछ बदल जाएगा। परंतु स्थिति वैसी की वैसी बसुर्क इतना था कि जिस घर से वहाँ वह दाई माँ की बेटी थी और यहाँ वह एक बड़े खानदान की बहू है। प्रिया को नरेंद्र की जीवन शैली रास नहीं आती थी। यही कारण था कि प्रिया नरेंद्र के साथ होकर भी उसके साथ नहीं थी। प्रिया दिन भर घर के कामों में मन लगाती परंतु हरदम से ही उसे यह सब रास नहीं आता था। प्रिया को एक नई राह मिलती है जब नरेंद्र उसे नए काम में हाथ बंटाने के लिए कहता है। प्रिया को तो जैसे खुशियों का खजाना मिल गया हो। परंतु यह सब भी नरेंद्र को अच्छा नहीं लगा और वह प्रिया को घर में रहने के लिए कहने लगा। परंतु प्रिया अब अपने काम में काफी आगे निकल चुकी थी और उसने अपना काम आगे भी जारी रखने का निर्णय लिया। नरेंद्र अपने और उसके काम में से किसी एक को चुनने को कहता है। प्रिया नरेंद्र से अलग होकर अपने बारह वर्षीय पुत्र संडू को छोड़कर पति से अलग हो जाती है और स्वतंत्र रूप से चमड़े का कारोबार चलाती है। जिसके सिलसिले में वह विदेश तक का सफर तय करती है। नरेंद्र से अलग होकर आज वह व्यापार जगत में एक सफल स्त्री व्यापारी है। जिसकी चर्चा इंडिया टुड़े में भी प्रकाशित होती है। प्रिया महिला वर्ग का वो हौसला है जो लाख रुकावटों के बावजूद भी समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाती है। ‘छिन्नमस्ता’ उपन्यास न केवल प्रिया बल्कि उसकी सौतेली ननद नीना जो उसके ससुर की नाजायज औलाद है, छोटी माँ जो प्रिया की सौतेली सास है, नरेंद्र की माँ, प्रिया की बड़ी भाभी जो उपन्यास के बीच में ही मर जाती है उन सभी

स्त्रियों की सामाजिक लड़ाई की कथा है। अंत में प्रिया अपने ससुराल और मायके दोनों से अपना नाता तोड़ सिर्फ छोटी माँ, नीना और मित्र फिलिप और जुड़ी के संपर्क में रहती है। जुड़ी और फिलिप उसके ऐसे दोस्त हैं जो उसका आत्मविश्लोण कर प्रिया की आत्मकथा या आत्मकथा जैसा लिखने के लिए प्रेरित करते हैं। नीना की शादी के बाद प्रिया अपने कारोबार को अकेले संभालती है और अपने कारोबार के जरिए ही अपने अस्तित्व का नवनिर्माण भी करती है।

'माई' उपन्यास की कथावस्तु में माई ड्योढि में बसी एक ऐसी कहानी है जिसमें तीन पीढ़ियाँ साँस ले रही थीं। दादी माई – और सुनैना। माई जो इन तीनों पीढ़ियों के बीच की कड़ी है जो न अपनी पहली पीढ़ी को छोड़ सकती है और न ही अपनी अगली पीढ़ी को अपना सकती है। माई दोनों पीढ़ियों के बीच में पिसती जा रही है, झुकती जा रही है। सुनैना और सुबोध नहीं समझ पा रहे हैं माई के झुकते हुए शरीर को और दादी, दादा नहीं देखना चाहते उसके झुकते हुए शरीर को। उन्हें तो झुकी आँखें, झुका शरीर और मंद आवाजों को देखने और सुनने की आदत जो पड़ चुकी है। उन्हें तो उसी में औरत का संस्कार झलकता है। माई का यूं झुकते चले जाना बिंध जाता है सुबोध और सुनैना के कारण तो मानसिक रूप से जुड़े थे माई से। पर माई को सभी को खुश रखना था। दादा और दादी को, बाबू को, सुबोध और सुनैना सभी को, तभी तो वो रज्जो से माई बन गई थी।

उसे नहीं फर्क पड़ता कि रज्जो कहाँ खो गई। बस वह यह चाहती थी कि कोई और ना भटक जाए अपनी पीढ़ी की लकीर से। यही सोच कर उसने सुबोध के साथ–साथ सुनैना को भी कभी नहीं रोका ड्योढ़ि लाँघ कर जाने को। तभी तो बाबू की जगह खुद ही दस्तखत करती थी सुनैना के दाखिलेनामे पर। माई खामोशी से सब सह जाती तो सुबोध और सुनैना को बड़ा गुस्सा आता। वो समझ नहीं पाते आखिर माई क्यों कुछ नहीं बोलती। वो सब क्यों बर्दाश्त करती है चुपचाप। वो नहीं समझ पाते कि माई अपनी खामोशी में बुनती जा रही है उन टूटते तारों को जो समय की मार से बिखरने की कगार पर हैं। चूल्हे से रसोई गैस तक का सफर माई ने सिर झुकाए ही तय कर लिया था। माई को कहीं न कहीं यकीन है कि उसका झुकना शारीरिक है मानसिक नहीं। कुछ तो बदलेगा, कुछ तो बदल रहा है। सुनैना ड्योढ़ी छोड़ अब शहर में पढ़ने लगी है। माई एक ऐसी पीढ़ी की प्रतीक है

जो संरक्षित करती है अपनी आगे की पीढ़ी को और अपनी आने वाली पीढ़ी को भी। कहीं न कहीं माई की पीढ़ी ने समझ लिया था, दादी और सुनैना दोनों की पीढ़ी की जरूरतों को। इसलिए तो वह उन दोनों पीढ़ियों की एक ऐसी कड़ी थी जो उनमें ताल–मेल बिठाने की भरपूर कोशिश करती रहती है, तमाम उम्र छ. लोगों का परिवार है, दादा, दादी, बाबू, माई, दो बच्चे सुनैना और सुबोध। माई भले ही चार दीवारी तक सीमित रही पर उसने अपने बच्चों को विदेश तक भेजा। उनकी आम जिंदगी की जरूरतों के मुताबिक अपने घर का माहौल साज–सज्जा, खान–पान तक में परिवर्तन किया। एक हिसाब से कहा जाए तो माई ने अपनी आने वाली पीढ़ी को बड़े ही अच्छे से पाला–पोसा और सींचा था। 'माई' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में रचित है। जिसमें माई की नई पीढ़ी यानि माई की बेटी सुनैना ने सारी कथा का संवाद किया है। अपनी स्मृतियों के आधार पर उसने माई के संपूर्ण चरित्र का खुलासा किया है।

अल्मा कबूतरी (2000) उपन्यास की कथावस्तु में उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' मैत्रेयी पुपा का बहुचर्चित उपन्यास है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी ने कथा के माध्यम से कबूतरा जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक यथार्थ की परतों को खोला है। देश की कानून व्यवस्था में कबूतरा जनजाति एक आपराधिक जनजाति घोाित कर दी गई। मैत्रेयी ने राम सिंह, भूरीबाई, जंगलिया, कदमबाई, मलिया, भजनी, सरमन, राणा और अल्मा जैसे कई कबूतराओं को लेकर अपने उपन्यास को गढ़ा है। उपन्यास शुरू होता है कदमबाई और उसके पति जंगलिया कबूतर से और अंत होता है अल्मा कबूतरी बबीना विधान सभा सीट की उम्मीदवार सत्तारूढ़ पार्टी की नेता से जो रणा की मंगेतर और कदमबाई की होने वाली बहू भी है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास का हर पात्र अपने आप में एक कथा सुनाता चलता है। हर पात्र का चरित्र पाठकों पर अपनी छाप छोड़ते हुए कथा की बागडोर कथा के अन्य पात्र को सौंपता जाता है। कथा आरंभ होती है कदमबाई के यौवन काल से और समाप्त होती है अल्मा के यौवन पर। जंगलिया कबूतरा से ब्याह कर आई थी कदमबाई कबूतरा बस्ती में जंगलिया अपने धंधे में ऐसा सिद्धहस्त कि कठिन चोरी को भी बड़ी ही सफाई और साहस से अंजाम देने वाला। इसी

चोरी–चकारी के काम के सिलसिले में ही जंगलिया की भेंट होती है कज्जा यानी सवर्ण जमींदार मालिक मंसाराम से। जिसके खेतों के डेढ़ बीघे में बसी है कबूतरा बस्ती।

जंगलिया से मिलने आए मंसाराम की भेंट होती है कदमबाई से जो कदमबाई के रूप पर मोहित हो उठता है। चाँदनी रात में खेत में पति जंगलिया की राह देखती कदमबाई के साथ उस रात जंगलिया नहीं बल्कि मंसाराम होते हैं और उसी रात से मंसाराम कबूतराओं के और कबूतरा मंसाराम के हो गए। जंगलिया उसी रात मारा जाता है और राणा कदमबाई की कोख में प्रवेश करता है। राणा कबूतराओं से भिन्न मनोभाव एवं मनोबल रखने वाला बालक कदमबाई के यहाँ जन्म लेता है। राणा प्रताप का अनुसरण कर बालक का नाम राणा रखा गया। कारण था कबूतरा स्वयं को रानी पद्मिनी और राणा प्रताप का वंशज मानते हैं।

राणा जात का कबूतरा और मन का कज्जा था। लाख प्रयत्नों के बावजूद भी राणा कबूतराओं की आपराधिक गतिविधियों में शामिल न हो सका तो कदमबाई ने उसे कलम थमा दी और उसे मरोड़ाखुर्द से गोरामछिया भूरीबाई के बेटे मास्टर राम सिंह कबूतरा के यहाँ भेज दिया और उसी की बेटी अल्मा से उसका ब्याह भी तय कर दिया था। राम सिंह ने अल्मा को भी पढ़ाया–लिखाया था और अपना प्रार्थना गीत 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजुए–कातिल में है', सिखाया था। अल्मा और राणा एक दूसरे को पसंद करने लगते हैं। परंतु इसी बीच डाकुओं और दरोगा की मिलीभगत के बीच राम सिंह मारा जाता है। राणा राम सिंह, डाकू बेटा सिंह और दारोगा के बीच की दोस्ती को गद्दारी मान कर गोरमक्षिया से लौट कर मरोड़खुर्द वापस भाग आता है। अल्मा पिता की मौत के बाद राम सिंह के साथी दुर्जन सिंह के साथ गिरवी रखी जाती है। अल्मा दुर्जन से सूरजभान के यहाँ फिर डाकू से मंत्री बने श्रीरामशास्त्री के यहाँ रहती है। अपनी इस अदला–बदली के रास्ते पर ही अल्मा की भेंट मंसाराम के भांजे धीरज से होती है। धीरज अल्मा को पसंद करने लगता है परंतु अल्मा को डाकुओं के हाथों बिकने से उसे बचा नहीं पाता। धीरज अल्मा का पता लगाकर श्रीरामशास्त्री के यहाँ उससे मिलने आता है। जहाँ अल्मा को राणा के बारे में बताता है। राणा अल्मा से दूर होने के बाद से पागल हो गया रहता है जिसे अल्मा के

सिवा और कुछ भी याद नहीं रहता है। मंसाराम घर–परिवार त्यागकर कबूतरा बस्ती में रहने लगते हैं। डाकू से मंत्री बने श्रीरामशास्त्री अशिक्षित होने के कारण जगहँसाई का पात्र बनते हैं। परंतु जल्द ही उन्हें अपनी कैद में रह रही अल्मा कबूतरी के शिक्षित होने का पता चलता है और वे अल्मा को अपना सलाहकार और मार्गदर्शक के रूप में अपने साथ रखते हैं तथा उसे पत्नी का दर्जा देते हैं। अल्मा भी श्रीरामशास्त्री का पूरा सहयोग करती है। पर इसी बीच श्रीरामशास्त्री की हत्या कर दी जाती है। अल्मा श्रीरामशास्त्री की उत्तराधिकारी होने के नाते उन्हें मुखाग्नि देती है और श्रीरामशास्त्री की खाली पड़ी बबीना विधानसभा की सीट और सत्तारूढ पार्टी के मंत्री की कुर्सी पर विराजमान होती है।

उपन्यास अल्मा कबूतरी कबूतरा जनजाति पर लिखी मात्र कथा नही अपितु ये कबूतरा जनजाति के लोगों की व्यथा–कथाका दस्तावेज है। जो अब सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक संरक्षण चाहती है। अल्मा इसी संरक्षण का बिगुल है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास एवं कहानियों में स्त्री जीवन का सजीव वर्णन मिलता है। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियों का शोषण भिन्न–भिन्न रूप में होता है। उपन्यास में विवाह, प्रेम, दहेज, अनैतिक संबंध, यौन शोषण आदि समस्या की प्रमुखता है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र शोषण दमन सहने वाली नहीं है। वह अपने अधिकार के लिए पारंपरिक रूढ़ियों के खिलाफ आज उठती है। पुरूषसत्तात्मक समाज को चुनौती देती है और उसके द्वारा बनाए गए रूढ़ियों को वह नकारती है। इस उपन्यास में सारंग और रेशम जैसे पात्रों द्वारा अन्याय और अत्याचार का विरोध इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियों को अपने शोषण और अत्याचार पर खुद आवाज उठानी होगी। भाग्य भरोसे बैठ कर सभी उसकी दशा में सुधार नहीं आ सकता है। स्त्री को अपने अधिकार और अस्तित्व को पहचना होगा, तभी वह अपनी दशा में सुधार ला सकती है। 'चाक' इन्हीं बिन्दुओं पर घुमती बीसवीं शताब्दी की सर्वेश्रेष्ठ उपन्यास है।